जनसत्ता
June 19, 2018

के. सिद्धार्थ का लेख : पर्यावरणीय नैतिकता और यथार्थ

अब सवाल यह है कि हम प्रकृति को किस रूप में देख रहे हैं और उससे क्या हासिल करना चाहते हैं। यह समझने की बात है कि पर्यावरण को संशोधित नहीं किया जा सकता और न ही उस पर कोई टिप्पणी की जा सकती है, और न ही इस पर तर्क किया जा सकता है।

जनसत्ता
नई दिल्ली | June 6, 2016 06:23 am

439 SHARES
SHARE

Get your business into the digital marketplace
Google Digital Unlocked
START LEARNING

जंगल (प्रतीकात्मक तस्वीर)

सभ्यता और सभ्य होने का सिर्फ एक अर्थ है,अपने आसपास के पर्यावरण का आदर और आदरसूचक मूल्य से उसके प्रति सोच। सभ्यताओं का पतन तभी होता है जब आसपास के पर्यावरण के प्रति सम्मान कम हो जाता है, पर्यावरण के प्रति नजरिया व परिप्रेक्ष्य बदल जाता है। सिंधु घाटी, दजला फरात, माया- इन सभी सभ्यताओं का पतन इन्हीं कारणों का प्रतिफल था। आज का आधुनिक और सभ्य समाज पर्यावरण के प्रति नजरिये को लेकर विरोधाभासी मनोवृत्ति और द्वंद्व में उलझा हुआ प्रतीत होता है। पर्यावरण के स्वरूप, उसकी सुंदरता, उसकी विशालता, उसकी भव्यता, उसके परिवर्तन में पर्यावरणीय समस्या भी देखी जा रही है, जैसे कि पर्यावरण खुद पर्यावरणीय समस्याओं के लिए जिम्मेदार है। और अगर यह समस्या है तो क्या यह समस्या मानवता की मनोवृत्ति के साथ है, या पर्यावरण के प्रति समझ न होने के कारण? पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन क्या वास्तव में समस्या हैं? हैं भी या नहीं?

संबंधित खबरें

कुछ हद तक इसका जिम्मेवार पर्यावरण शब्द का चलता-फिरता उपयोग भी है। आज 'पर्यावरण' शब्द का उपयोग सामान्य अर्थ में अधिकाधिक लिया जा रहा है, जैसे सामाजिक पर्यावरण, व्यापारिक पर्यावरण, खेल पर्यावरण आदि। इसका एक परिणाम यह है कि वह अपनी शुद्धता और विशिष्टता खोता जा रहा है। वास्तव में इस शब्द का पर्याय प्रकृति और जीवन का पर्यावरण के प्रति समायोजन है, जो कहीं अधिक विशेष, सात्विक और अर्थपूर्ण है। लेकिन विडंबना यह है कि जो हमारा जीवन है उसे आज पर्यावरणीय समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है और यह हमारी मानसिक और अवधारणात्मक विकृति को संप्रेषित करता है।

दरअसल, हमारी समायोजन न करने की चाह पर्यावरणीय समस्या नहीं बल्कि प्रकृति के साथ दुर्व्यवहार है। यदि तथाकथित समस्याओं की गहराई पर विचार किया जाए तो स्वाभाविक सवाल यह उठता है कि क्या पर्यावरण और प्रकृति से जुड़े हुए सारे परिवर्तन 'समस्या' हैं? क्या ज्वालामुखी की क्रिया हमेशा विध्वंसक ही होती है? क्या बाढ़ वास्तव में एक आपदा है? क्या प्रकृति को मनुष्य के मनोनकूल व्यवहार करना चाहिए? क्या जलवायु की विभिन्नता जलवायुगतिक परिवर्तन है?

'पर्यावरणीय समस्या' शब्द से जो अर्थ निकलता है वह एक त्रासद अर्थ है, क्योंकि प्रकृति के प्रति आम जनजीवन के श्रद्धाभाव मे निरंतर कमी आई है। यही कारण है कि हम इसे एक वस्तु के रूप मे देख रहे हैं। यदि ऐसी समस्या है तो इस समस्या को बहुत सरलीकृत भाव मे लिया जाता है। इससे समस्या क्या है और कहां है, इसकी वास्तविक पहचान नहीं हो पाती है। हर वह वस्तु जिससे मनुष्य को नुकसान पहुंचता है उसे एक ही पलड़े पर रखा जाता है। जैसे, यह कैसे हो सकता है कि मानव जीवन के लिए जितना खराब रेडियोएक्टिव प्रदूषण है उतना ही खराब ज्वालामुखीय विस्फोट हैं। जितना बुरा कीटनाशकों के कारण मिट्टी का पतन है उतना ही बुरा हिमस्खलन या भूस्खलन है? एक के लाभदायक परिणाम भी होते हैं, दूसरे के कभी नहीं।

इसके लिए 'समस्या' शब्द का उपयोग कहीं से भी नैतिक नही है। 'पर्यावरणीय समस्या' मानव द्वारा पैदा की गई है। कोई भी शब्द सिर्फ शब्द नहीं होता बल्कि उसमें भाव छिपा रहता है जो हमारी मानसिकता को प्रदर्शित करता है। प्राकृतिक घटनाएं सिर्फ घटनाएं हैं, वे कहीं से भी समस्या नहीं हैं और न ही सत्यनिष्ठा की दृष्टि से उन्हें इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है। 'पर्यावरणीय समस्या' में अवधारणात्मक और विचारात्मक खोट है। इस तरह के प्रयोग से मनुष्य अपने हानि-लाभ के विषय में केंद्रित हो जाता है और प्रकृति का वास्तविक अर्थ खो जाता है। अब उसका अर्थ सिर्फ मनुष्य को हानि पहुंचने या मनुष्य को लाभ पहुंचने के रूप में रह जाता है। हानि-लाभ के आधार पर प्रकृति का जैसा आकलन किया जा रहा है वह न सिर्फ गलत है बल्कि हमारी नितांत स्वार्थी, संकुचित, स्वकेंद्रित और प्रकृति-विरोधी मानसिकता का परिचायक भी है।

इस तरह की अवधारणात्मक विकृतियां मुख्यत: पर्यावरण के प्रति गलत दृष्टिकोण की वजह से पैदा हुई हैं। पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित न करने की वजह से ही ऐसी कठिनाइयां आ रही हैं। अगर इंसानी नजरिए से देखा जाय तो प्रकृति के प्रति यह आम धारणा होती है कि उससे वह कितना अधिक से अधिक लाभ ले सकता है। यही स्वार्थी दृष्टिकोण समस्याओं को पैदा करता है। लगातार यह देखा जा रहा है कि मानसून को लेकर 'अनिश्चित' और 'सामान्य' दो शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। ये शब्द हमारी पूर्वाग्रही मानसिकता के द्योतक हैं। यह निर्णय कौन करेगा कि मानसून को कैसा होना चाहिए। अगर मानसून हमारे अनुकूल नहीं आता तो वह अनिश्चित है! इस तरह से बाढ़ आपदा, सूखा आपदा, भूकंप आदि आपदाएं बताई जाती हैं। इन्हीं अनगिनत भूकंपों ने हिमालय का निर्माण किया, ऐसे ही अनगिनत करोड़ों बाढ़ों ने गंगा के मैदान का। और अगर करोड़ो वर्षों तक विध्वंसक जवालामुखी क्रिया नहीं हुई होती तो महाराष्ट्र का आज नामोनिशान न होता। 'आपदा' शब्द से प्रकृति और मानव के मैत्रीपूर्ण संबंध समाप्त हो जाते हैं और पर्यावरण को मनुष्य के दुश्मन की तरह प्रस्तुत किया जाता है।

प्रकृति के प्रति यह नजरिया हमारी सीख को बाधित कर देता है, जो प्रकृति हमारी शिक्षक है। प्रकृति एक सीखने, जानने और ज्ञानार्जन के साधन के रूप में है। यही नहीं, प्रकृति हमारी संरक्षक [illegible] जैसा विस्तृत करते रहे हैं और कर सकते हैं। मनुष्य अगर अपनी अंतर्दृष्टि को विकसित कर ले तो प्रकृति उसे सहज ही ज्ञानवान बना सकती है। प्रकृति को समझने के लिए प्रकृति के पास ही जाना पड़ेगा। बाहरी ज्ञान प्रकृति के स्वभाव के विपरीत ही परिणाम देगा।

आजकल प्रकृति को संसाधन के तौर पर देखने और व्याख्यायित करने का चलन बढ़ता जा रहा है। पर यह बहुत ही दोषपूर्ण दृष्टि है। प्रकृति हमारी सुविधा प्रदाता नहीं है, वह हमारी विरासत है। सुविधा प्रदाता के रूप में प्रकृति को देखना हमारा स्वार्थ, मूल्यहीन सोच और हमारी सबसे बड़ी भूल है। हमें उसे अपनी विरासत के रूप में बहुत संभाल कर और सहेज कर रखने की जरूरत है। प्रकृति को वस्तु के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि उसे अपने संरक्षक और शिक्षक के रूप देखना अधिक लाभप्रद होगा। यह सोचना कि प्रकृति हमेशा एक जैसा व्यवहार करेगी, न सिर्फ गलत है बल्कि हमारे अज्ञान का द्योतक भी है। उसका मूल स्वभाव ही बदलावधर्मी है। गर्म होना, ठंडा होना, शुष्क होना, बरसात होना आदि बदलाव के ही प्रतीक हैं। यह मुद्दा ही नहीं है कि प्रकृति ज्यादती करती है या कर रही है बल्कि यही प्रकृति के चमत्कार हैं। वह कोई मिथक नहीं, वास्तविकता है जिसे मनुष्य को स्वीकारना होगा। प्रकृति के पास सीखने के ऐसे स्रोत हैं जो अनेक आपदाओं से निपटने में सहायक हो सकते हैं।

अब सवाल यह है कि हम प्रकृति को किस रूप में देख रहे हैं और उससे क्या हासिल करना चाहते हैं। यह समझने की बात है कि पर्यावरण को संशोधित नहीं किया जा सकता और न ही उस पर कोई टिप्पणी की जा सकती है, और न ही इस पर तर्क किया जा सकता है। प्रकृति तर्कातीत है। तर्क और अपने ज्ञान से प्रकृति और पर्यावरण को तौलने के बजाय इस बात की ज्यादा जरूरत है हमारा उससे समन्वय कैसा है। पर्यावरण के बदलाव को समस्या बना कर हल करने के बजाय अपनी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को नियंत्रित व प्रबंधित करना अधिक आवश्यक है। प्रकृति की समस्या को दूर करने के बजाय जरूरत इस बात की अधिक है कि आम जनमानस को प्रकृति के प्रति संवेदनशील और जागरूक बनाया जाए। सभी तथाकथित प्राकृतिक खतरे मसलन ज्वालामुखी, भूकम्प, चक्रवात, सुनामी, बाढ़, सूखा आदि सभी मानव हित के लिए उपकारी हैं। उनका कहीं न कहीं प्रकृति के संतुलन में योगदान होता है। इनके बिना इस ग्रह पर मनुष्य के लिए जीवन का रास्ता असंभव है। यह विडंबना ही है कि भूकंप, ज्वालामुखी, चक्रवात, सुनामी, बाढ़.. जिसने पृथ्वी का निर्माण किया, आदि इन सारी घटनाओं को आधुनिक सभ्यता के लिए खतरों के रूप में देखा जा रहा है।

वास्तव में पर्यावरणीय समस्या जैसा कोई शब्द या भाव होना नहीं चाहिए और न ही इसे समस्या समझ कर दूर करने की कोशिश की जानी चाहिए, हां इसका कोई प्रबंध किया जा सकता है और वह भी खुद को इसके प्रति समायोजित-अनुकूलित करके, न कि उसकी आलोचना करके। वास्तव में पर्यावरण के बदलाव प्राकृतिक रूप हैं। प्रकृति हमेशा खुद से गर्म होती है फिर ठंडी होती है। तो क्या यह समस्या है? बिलकुल नहीं। यह उसका स्वरूप है। अगर ऐसा नहीं होता तो केदारनाथ मंदिर नहीं बन पाता, वहां चावल की खेती नहीं होती। वहां का मौसम गरम था, फिर ठंडा हुआ, फिर थोड़ा गरम हुआ। अर्थात प्राकृतिक आपदा जैसी कोई बात होती ही नहीं। प्रकृति स्थिर नहीं है, सदैव बदलती रहती है। वह शिक्षक है और सिखाती भी है। अत: 'आपदा' और 'बदलाव' के अंतर को समझा जाय। वास्तविकता यह है कि हम बदलाव को आपदा मान चुके हैं, जिसे अपने मन से निकालना होगा तभी हम पृथ्वी पर बेहतर रूप में रह पाएंगे, प्रकृति का उपयोग कर पाएंगे। प्रकृति का सम्मान ही संस्कार है, विद्या है, ज्ञान है, सभ्यता है। इस सभ्यता के पतन का पहला चरण प्रकृति के प्रति मौजूदा मनोवृत्ति, हमारा नजरिया और हमारी स्वार्थ-केंद्रित सोच है।